Chap-5

अध्याय - 5

शब्द - शक्ति - निरूपण

शब्द-शक्ति :

काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में शब्द-शक्ति एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किए हुए है। संस्कृत एवं हिन्दी रीतिकालीन लगभग सभी सर्वांग निरूपक आचार्यों ने शब्द-शक्ति का विवेचन किया है। कुँवरकुशल ने भी अपने रीति-ग्रंथ 'लखपति-जस-सिन्धु' में शब्द-शक्ति पर अपने विचार प्रकट किए हैं। कुँवरकुशल द्वारा निरूपित शब्द-शक्ति का विश्लेषण करने से पूर्व यह उचित प्रतीत होता है कि हम शब्द के स्वरूप को देखने का प्रयत्न करें -

वास्तव में देखा जाये तो यह शब्द ही है जो मानव को मानव के साथ बाँधने का काम करता है। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो मानव रूपी समुद्र के दो किनारों को मिलाने के लिए एक सेतुबन्ध का कार्य यह शब्द ही करता है। "सबसे पहले शब्द ही ने सृष्टि को जीवन का भान कराया और आज भी उसके बिना आचार, विचार, भाव या भावना और कल्पना का अस्तित्व शक्य नहीं। + + + शब्द ही हमारे विचारों की गहराई मापते हैं और आचार की प्रणालिका स्थिर करते हैं। शब्द-जाल से रचे हुए भवन पर ही इस दुनिया का व्यावहारिक जीवन टिका हुआ है।"[1] इस शब्द के कारण ही हम इस नाम रूपात्मक जगत् के स्वरूप को पहचानते हैं। शब्द के अभाव में हम एक दूसरे के निकट रहकर भी जैसे नहीं रहते। इस संसार में रहते हुए हम शब्द के अभाव की कल्पना तक नहीं कर सकते। "शब्द अग्नि के समान भुवन में प्रविष्ट है, आकाश के समान विभु है। किसी आकाश-देश को प्रयोग से अभिज्वलित कीजिए, कान लगा के सुनिए, बुद्धि से समझिए, अर्थ हाथ बाँधे खड़ा है।"[2] इस तरह शब्द के साथ-साथ अर्थ भी महत्वपूर्ण है। बिना शब्द के अर्थ का अस्तित्व नहीं और बिना अर्थ के शब्द की

1- राष्ट्रभारती मार्च 1966-कन्हैयालाल माणिकलाल मुनशी, पृ0 66

2- काव्यालोक-द्वितीय उद्योत-पं0 रामदहिन मिश्र (केशवप्रसाद मिश्र द्वारा लिखित भूमिका से उद्धृत)

गति नहीं । दोनों की उपस्थिति ही उन्हें सार्थकता प्रदान करती है । शब्द और अर्थ दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध रहता है । "बिना सम्बन्ध का शब्द अर्थहीन होता है । उसमें किसी अर्थ के बोध करने की शक्ति नहीं रहती । सम्बन्ध उसे अर्थवान बनाता है, उसमें शक्ति का संचार करता है । इसी सम्बंध या शक्ति से ही शब्द इस अर्थमय जगत् का शासन करता है ।"[1] शब्द अपने अर्थ से पृथक् होकर भी पृथक् नहीं रहता । इसीलिए कालिदास ने कहा है -

"वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ।।"[2]

इसी शब्दार्थ का संश्लिष्ट रूप हम शब्द शक्ति में देखते हैं । "साहित्य के अंतर्गत जिस शक्ति किंवा कौशल के द्वारा शब्दार्थ का बोध होता है, उसी को शक्ति कहकर पुकारा गया है । शब्द-शक्ति की विवेचना वस्तुतः सार्थक शब्दों की ही विवेचना होती है, क्योंकि साहित्य के अंतर्गत अर्थवान शब्द को ही 'शब्द' कहा गया है । किसी शब्द की अर्थ प्रवृत्ति कितने प्रकार की है अथवा अमुक शब्द का अमुक स्थान पर क्या अभिप्राय है -यही शब्द-वृत्ति का विषय विस्तार है ।"[3] उपर्युक्त उद्धरण से शब्द शक्ति का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है । किस प्रकार अपनी बात को अधिक से अधिक भावप्रवण तथा प्रभावशाली बनायें, साथ ही शब्दों की अधिकता भी न हो, यही शब्द शक्ति का विषय है । सामान्य कथन को भी कुछ इस प्रकार से प्रस्तुत किया जाये कि श्रोता अथवा पाठक के हृदय पर प्रभाव पड़े, इसी के लिए शब्द-शक्ति का प्रयोग किया जाता है । जिस माध्यम के द्वारा शब्द का अर्थ सहज ही ज्ञात हो जाये वह उस शब्द की शक्ति ही कहलायेगा। शब्दार्थ बोध में यही शक्ति सहायक होती है । इसी के द्वारा हम एक दूसरे के

1- काव्यालोक-द्वितीय उद्योत-पं0 रामदहिन मिश्र, पृ0 14-15 से उद्धृत ।

2- रामचरितमानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन-डॉ0 राजकुमार पाण्डेय, पृ0 356 से उद्धृत ।

3- वही- पृ0 355

हृदयगत भावों को भी आसानी से समझ सकते हैं। इसी शब्द शक्ति के माध्यम से गूढ़ार्थ को भी हृदयंगम कर सकते हैं। कवि की कविता में अन्तर्निहित सौन्दर्य का भी उद्घाटन इसी शब्द-शक्ति के माध्यम से सरलतापूर्वक हो जाता है।

शब्द-शक्ति काव्यशास्त्र का महत्वपूर्ण उपांग है। हिन्दी रीतिकाल में शब्द-शक्ति को विवेचित करने की बहुविध प्रणालियाँ प्रचलित थीं। कुछ विद्वान् शब्द-शक्ति का विवेचन विशुद्ध रूप से सैद्धांतिक दृष्टिकोण को लेकर करते थे, कुछ विद्वान् नायिका भेद और अलंकार निरूपण के संदर्भ में शब्द शक्ति का विवेचन करते थे। प्रतापसाहि का 'व्यंगार्थ-कौमुदी' इसी प्रकार का ग्रंथ है। कुछ विद्वान् लक्ष्य ग्रंथों के अंतर्गत शब्द-शक्ति का उपयोग करते हुए सरस उदाहरणों की विनि-योजना करते थे। जैसे बिहारी का काव्य। इस सम्बंध में डॉ० किशोरीलाल ने शब्द-शक्ति विवेचन की तीन पद्धतियाँ बताई हैं:-

(1) शब्द-शक्ति का विवेचन स्वतंत्र (सैद्धांतिक) रूप में।

(2) शब्द-शक्ति का विवेचन नायिका भेद और अलंकार-निरूपण के संदर्भ में।

(3) शब्द-शक्ति का विवेचन लक्ष्य-ग्रंथों के रूप में।[1]

रीतिकालीन सर्वांग निरूपक आचार्यों ने अपने ग्रंथों में शब्द-शक्ति का विवेचन स्वतंत्र रूप में किया है। जैसे- चिन्तामणि ने 'कविकुलकल्पतरु' में, कुलपति मिश्र ने 'रस-रहस्य' में, देव ने 'शब्द-रसायन' में, सोमनाथ ने 'रसपीयूषनिधि' में, भिखारीदास ने 'काव्य-निर्णय' में तथा प्रतापसाहि ने 'काव्य-विलास' में। कुँवरकुशल ने भी अपने ग्रंथ 'लखपति जससिन्धु' में शब्द-शक्ति का इन्हीं आचार्यों की भाँति स्वतंत्र (सैद्धांतिक) रूप में विवेचन किया है। इन सभी ग्रंथों में जो विवेचन किया गया है उसका आधार या तो मम्मट का 'काव्यप्रकाश' रहा है अथवा विश्वनाथ

1- रीतिकवियों की मौलिक देन- डॉ० किशोरीलाल, पृ० 73

का साहित्यदर्पण । कुँवरकुशल ने शब्द-शक्ति का विवेचन करने से पूर्व शब्द की उत्पत्ति पर विचार किया है -

> 'आकांक्षा संनिधि अरु सहीयोगिता संग ।
> अन्वय पद अरथनि मिलित प्रगटै शब्द प्रसंग ।।'[1]

आकांक्षा संनिधि और योग्यता के संग शब्द प्रकट होता है । कुँवरकुशल ने यह वर्णन 'साहित्यदर्पण' के आधार पर किया है । विश्वनाथ के अनुसार योग्यता, आकांक्षा और आसक्ति से युक्त होने पर ही पद समूह वाक्य कहलाता है ।[2] कुँवरकुशल और विश्वनाथ दोनों के वर्णन में थोड़ी भिन्नता दृष्टिगत होती है । कुँवरकुशल ने क्रम में भी परिवर्तन कर दिया है । विश्वनाथ ने प्रस्तुत विवेचन में 'वाक्य' का प्रयोग किया है और कुँवरकुशल ने 'शब्द' का । मम्मट ने अपने 'काव्यप्रकाश' में शब्द की उत्पत्ति के सम्बंध में जो विचार प्रस्तुत किए हैं वे शब्द की चौथी वृत्ति (शक्ति) तात्पर्यार्थवृत्ति की कारिका में दिये हैं । कुँवरकुशल ने तात्पर्यार्थवृत्ति का परित्याग किया है । यों मुख्य रूप से शब्द की तीन ही शक्तियाँ होती हैं । परन्तु कुमारिल भट्ट के अनुयायी अभिहितान्वयवादी आचार्यों ने चौथी वृत्ति तात्पर्यार्थ को भी स्वीकार किया है । यहाँ पर कुँवरकुशल मम्मट से सहमत होते हुए तीन ही शब्द-शक्तियों को स्वीकार करते हैं । वाचक, लाक्षणिक और व्यंजक शब्दों के अनुरूप ही तीन प्रकार के वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य अर्थ होते हैं ।[3] रीतिकालीन अन्य

1- ल.ज.सि0, पं0 त. क्र. सं0 1

2- 'वाक्यं स्याद्योग्यताकांक्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः' । सा.द.पृ0 24

3- 'बाचक औ लाछनिक बिधि व्यंजक शब्द बनाय ।
वाच्यलछि अरु व्यंजकहि अर्थहु तीन उपाय ।।'
ल.ज.सि., पं.त.क्र.सं0 2

आचार्य चिन्तामणि[1] कुलपति मिश्र[2], सूरति मिश्र[3] तथा प्रतापसाहि[4] भी इसी प्रकार के विचार प्रकट करते हैं। वाचक की परिभाषा देते हुए कुँवरकुशल कहते हैं कि बिना किसी प्रयत्न के ही स्वयम् ही अर्थ बता दे वह वाचक शब्द होता है जैसे जल के सुनते ही पानी का बोध होता है।[5] कुँवरकुशल ने यह परिभाषा कुलपति मिश्र के रस रहस्य के आधार पर ही दी है।[6] तत्पश्चात् वाचक शब्द के तीन अर्थ बताये हैं।[7] वे शाब्दिक रूपान्तर के साथ रसगंगाधरकार जगन्नाथ से सहमति प्रकट करते हैं।[8] हिन्दी में सूरति मिश्र[9] तथा प्रतापसाहि[10] ने भी इसी प्रकार वाचक के भेदों का उल्लेख किया है। मम्मट द्वारा निरूपित वाचक के भेद भिन्न हैं। "संकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादिर्जातिरेव वा।" काव्यप्रकाश-पृ0 25। इन्होंने जाति, गुण, क्रिया और यदृच्छा नामक चार भेद बताये हैं। सूरति मिश्र ने उपर्युक्त चार भेद काव्य सिद्धांत में बताये हैं। मम्मट की उक्त धारणा वैयाकरणों की धारणा कहलाती है और जगन्नाथ ने जिन भेदों का उल्लेख किया है वे न्यायिकों की धारणा का अनुमोदन करते हैं।

1- "पद वाचक अरु लाक्षणिक व्यंजक त्रिविध बखान।
वाच्य लक्ष्य और व्यंग्यपुनि अर्थो तीनि प्रमान।"।।
रीति कवियों की मौलिक देन-डॉ0 किशोरीलाल पृ0 74 से उद्धृत।

2- "बाचक लक्षक व्यंजकौ सबद तीनि विधि सोइ।
वाच्य लक्ष अरु व्यंग पुनि अरथ तीनिबिधि होइ।। र.र., द्वि.वृ., छं0सं0 3

3- शब्द त्रिविधि वाचक प्रथम अरु लाक्षिनक सुजानि।
व्यंजक तह्वाचक त्रिविधि रूढ़ योगि कहि मानि।।
वाच्य लक्षन अरु व्यंज्यना ए तीन भाति के अर्थ। काव्यसिद्धांत-छं0सं0 6,8

4- वाचक ते वाच्यार्थ कहि, लक्षक ते लक्ष्यार्थ।
तीनि भाँति जो जानियै, विंजक ते विंग्यार्थ।।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 176 से

5- वाचक सो कह अर्थ बिना ही आपहि अर्थ उपावै।
जैसे श्रवननि सुनिबे जल के पानी कौ सब पावै।। ल.ज.सिं., पं0 त छं0 सं0 3

6- बाचक सो जु होइ बिन आप अरथ कहि देइ। जैसे जल सुनते ही पानी को ज्ञान सबको होइ। र र, द्वि, वृ0 छं0सं0 4

7- बाचक त्रिविध बखानियै रूढ़ योगि कह जानि। तीजो तन्मिश्रजु तहां तीनौ उर आनि।। ल ज सिं., पं0 त., छं0 सं0 4

8- रसगंगाधर - पृ. 1 [illegible]

9- वाचक त्रिविधी रूढ़ योगि कहि मानि।। तीजे तन्मिश्रौ कहैं जैसे भू यह रूढ़।
जौगिक विधि सुत आदि लखि पंकज मिश्रत गूढ़।। काव्यसिद्धांत, छं, सं0 6,7

10- "रूढ़ सु जौगिक दूसरो जोगरूढ़ त्रै मानि।
हिंदी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 176 से उद्धृत

कुँवरकुशल ने वाच्यार्थ का लक्षण इस प्रकार किया है -

'वाच्य अरथ सो पद कै सुनिबै ललकि चित्त गहि लेइ ।
जैसें मही कहे तें कविजन भूमि रू भुव कहि देइ ।।'[1]

कुलपति मिश्र ने भी सुनते ही चित्त जिस अर्थ को ग्रहण कर ले उसे वाच्यार्थ माना है ।[2] इस प्रकार का अर्थ जिस शक्ति के माध्यम से ग्रहण किया जाता है वह अभिधा शक्ति कहलाती है । इस अभिधा शक्ति में कुँवरकुशल ने कुलपति मिश्र[3] की भाँति ईश्वरेच्छा को प्रमुख माना है -

'यह पद तें पद ई अर्थ । जानत जैसै रूप ।
कहि ईछा भगवान की यहई शक्ति अनूप ।।[4]

यहाँ भगवान की इच्छा से तात्पर्य पूर्व-निर्नियोजित अर्थ है न कि बाद में पुनः मनुष्य द्वारा आरोपित अर्थ । प्रतापसाहि ने भी अपने 'काव्य-विलास' में इसी प्रकार का विचार प्रस्तुत किया है -

'जो पद सों ऐसो अरथ अभिधा व्योहार ।
जो इच्छा जगदीश की सु है शक्ति निरधार ।।[5]

1- ल.ज.सिं., पं0 त., छं0 सं0 6

2- 'वाच्य अरथ सो निबन्ध पद सुनत जाहि चित्त गहि लेइ । ' र.र., द्वि.वृ0

3- 'या पद तें यह ई अरथ जानो ऐसे रूप ।
जो इच्छा भगवान की सो है शक्ति अनूप ।। वही-

4- ल.ज.सिं., पं.स.छं0 सं0 9

5- हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य -डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 176 से उद्धृत ।

वास्तव में देखा जाये तो यह संकेतित अर्थ ही है जो पद के सुनते ही हृदय ग्रहण कर लेता है। मम्मट ने इसी शब्द के साक्षात् संकेतित अर्थ को ही अभिधा शक्ति के अंतर्गत लिया है।[1] भिखारीदास ने भी संकेत शब्द का प्रयोग करते हुए अपनी बात कही है।[2] अभिधा शक्ति में भी यही संकेतित अर्थ निहित रहता है। इसी संकेतित अर्थ को वाच्यार्थ कहते हैं। अत: कहा जा सकता है कि वाचक और वाच्यार्थ पूर्व प्रचलित एवं सर्वमान्य, सर्वज्ञात होते हैं जो श्रवण मात्र से ही ग्राह्य हो सकते हैं।

लक्षणा :

डॉ० गुलाबराय लक्षणा के सम्बंध में कहते हैं कि "लक्षणा द्वारा अर्थ के विस्तार से भाषा में रबड़ की भाँति खिंच कर बढ़ जाने की शक्ति आती है। बँधे बँधाये अर्थों को कुछ विस्तार और भिन्नता देने में जो बाधा पड़ती है उसका लक्षणा द्वारा शमन हो जाता है और भाषा में एक विशेष प्रकार की गतिशीलता आ जाती है। शब्दों के अल्प व्यय से अर्थ-बाहुल्य में सुलभता होती है और वाग्वैदग्ध्य आ जाता है।"[3] लक्षणा में शब्द का पूर्व निश्चित अर्थ व्यर्थ प्रतीत होने लगता है। लक्षणा शक्ति के माध्यम से कथन में चारुता आ जाती है। कुँवरकुशल ने लक्षणा का लक्षण देने से पूर्व लाक्षणिक शब्द का भी लक्षण किया है -

"शब्द लाछनिक में सही वृत्ति लछिना बोलि।
तासों अर्थ कढ़ै तहाँ लछ्छि तासों तोलि।।"[4]

[illegible]

1- "साक्षात्संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचक:।" काव्यप्रकाश पृ० 24

2- "ऐसे शब्दन्ह सों जहाँ प्रगट होहिं संकेत। ताहि वाच्यार्थ कहे सज्जन सुमति सचेत।।" भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) -सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० 7

3- सिद्धांत और अध्ययन- डॉ० गुलाबराय, पृ० 245-46

4- ल.ज.सिं., पं० त., छं० सं० 10

कुँवरकुशल ने गद्य की टीका में विस्तृत रूप से समझाते हुए कहा है कि जिसमें सीधा शब्द का अर्थ असंभव सा लगे मन में इस प्रकार की प्रतीति होने लगे कि इस प्रकार से नहीं दूसरी प्रकार से हो अथवा वाच्यार्थ को विचार कर देखें तो उसमें असामंजस्य हो, उसमें अयुक्तता विद्यमान हो वह लाक्षणिक शब्द होता है। इस लाक्षणिक शब्द का वर्णन इतने विस्तृत रूप में चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, सुरति मिश्र, देव तथा भिखारीदास जैसे प्रबुद्ध आचार्यों में से किसी ने भी नहीं किया है। यहाँ पर कुँवरकुशल अन्य आचार्यों से वर्णन की स्पष्टता की प्रवृत्ति को लिए हुए दृष्टिगत होते हैं। अपने आशय को समझाने के लिए ऐसा प्रयत्न किया गया है।

लक्षणा में मुख्य अर्थ बँध जाता है और साक्षात् शब्द(पूर्व निश्चित अर्थ से युक्त) से ज्ञान नहीं हो पाता है। पुनः कुलपति मिश्र[1] की भाँति कहते हैं कि जब मुख्यार्थ कथन की स्पष्टता नहीं कर पाता, तब कथन से तत्सम्बंधित अन्य अर्थ लिया जाता है -

'लक्षिक जब अरथ न लहै तब समीप तें पाय।[2]

प्रतापसाहि भी समीप से अर्थ ग्रहण करना ही लक्षणा के अन्तर्गत मानते हैं।[3]

इसके अतिरिक्त पुनः कुँवरकुशल ने लक्षणा में मुख्य अर्थ का बाधित होना बताया है -

---

1- लक्षक सो अरथ न लहै तब ढिग तें गहि लेइ
र.र., द्वि.वृ0

2- ल.न.सिं., पं0 त., छं0 सं0 11

3- अर्थ न लक्षक सो बनत गहि समीप तें जोइ।
हिंदी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी, पृ0 178 से उद्धृत।

बाधक मुख्य अरथ के बनिबे उनिके पास उजास ।
अरू अरथ जातैं लषियत हैं तकहु लछिना तास ।। [1]

इस तरह कुँवरकुशल ने तीन दोहों में अपने कथन को स्पष्ट किया है। काव्यप्रकाशकार मम्मट[2] तथा अन्य रीतिकालीन आचार्य भी मुख्य अर्थ के बाधित होने से सहमत हैं।[3] यहाँ पर कुँवरकुशल तथा अन्य आचार्यों में जो अन्तर दृष्टिगत होता है। वह उनके प्रस्तुतीकरण में है। जहाँ अन्य आचार्यों ने केवल एक ही छन्द में अपनी बात कही है वहीं कुँवरकुशल ने तीन दोहों में बार-बार समझाते हुए अपना आशय प्रकट किया है। इससे उनकी स्पष्टीकरण की तथा अध्यापकीय वृत्ति का संकेत मिलता है। अध्यापक भी विद्यार्थियों को समझाते हुए भिन्न-भिन्न ढंग से एक ही आशय को प्रस्तुत करता है ताकि विद्यार्थी उसे अच्छी तरह हृदयंगम कर सकें।

1- ल.न.सिं., पं0 त., छंद सं0 12

2- "मुख्यार्थ बाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात्।" काव्य प्रकाश पृ0 31

3- (क) "मुख्यारथ के बाध अरु जोग लछना होइ"। (चिन्तामणि)
(क) हिन्दी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य- डॉ0 सत्यदेव चौधरी
पृ0 सं0 148 से उद्धृत।
(ख) मुख्य अर्थ के बाध तैं पुनि ताही के पास।
र.र.द्वि.वृ0
(ग) मुख्य अर्थ बाधे जहाँ तहाँ लछना पोष।
काव्य सिद्धांत-छं0 सं0 9
(घ) मुख्य अर्थ के बाध सौं सब्द लाच्छनिक होत।
भिखारीदास (द्वितीय खण्ड)-सं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ0 8

लक्षणा के भेद :

लक्षणा दो प्रकार की होती है एक रूढ़ि लक्षणा और दूसरी प्रयोजनवती लक्षणा।[1] रूढ़ि लक्षणा का कोई भेद नहीं होता है। प्रयोजनवती लक्षणा के दो भेद शुद्धा और गौणी सर्वमान्य हैं। अतः कुँवरकुशल ने इनका संकेत न कर सीधे प्रयोजनवती लक्षणा के छः भेद बतलाए हैं। चार शुद्धा लक्षणा के और दो गौणी लक्षणा के।[2] शुद्धा लक्षणा के चार भेद इस प्रकार हैं - उपादान लक्षणा, लक्षण-लक्षणा, सारोपा लक्षणा और साध्यवसाना लक्षणा।[3] ठीक इसी प्रकार भिखारीदास ने भी 'काव्यनिर्णय' में प्रयोजनवती शुद्धा लक्षणा के भेद निरूपित किए हैं।[4] कुँवरकुशल द्वारा निरूपित यह वर्गीकरण स्पष्टता को लिए हुए है। मम्मट द्वारा निरूपित प्रयोजनवती लक्षणा का वर्गीकरण कुछ उलझा हुआ है। मम्मट ने प्रथम भेद शुद्धा लक्षणा का बताया है। शुद्धा लक्षणा

1- मान्यौ है व्यौहार मत्रि प्रगट सुकवि कुल पेषि।
रूढि प्रयोजन नाम रचि दोइ लछिना देषि।।
ल.ज.सिं., पं० त., छं० सं० 13

2- षरो प्रयोजन भांति षट सुद्धा गौणी सोधि।
सुद्धा चारि प्रकारि शुभ बिब गौणिसु प्रबोधि।।
वही, छं० सं० 15

3- उपादान लै पहिलै इहां लछन लछना पेषि।
सारोपा तीजै सही साध्यवसान संपेषि।।
वही, छं० सं० 16

4- उपादान इक सुद्ध मैं, दूजी लछन ठान।
तीजी सारोपा कहैं, चौथी साध्यवसान।।
भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० 9

को दो भागों में वर्गीकृत किया है - शुद्धा उपादान लक्षणा, शुद्धा लक्षणा लक्षणा। तत्पश्चात् सामान्य लक्षणा के ही दो भेद सारोपा लक्षणा और
साध्यवसाना लक्षणा बताये हैं। इन्हीं सारोपा लक्षणा और
साध्यवसाना लक्षणा के पुनः दो-दो भेद शुद्ध रूप और गौण रूप में किए हैं। कुँवरकुशल ने इसे सामान्यजन सुलभ बनाने के लिए स्पष्ट और सरस ढंग से विवेचित कर दिया है। आखिर कुँवरकुशल ब्रजभाषा पाठशाला के आचार्य थे - सरल और सुगम शैली ही उन्हें प्रिय थी। यही शैली सामान्य पाठकों और छात्रों के लिए भी ग्राह्य थी।

अपने अर्थ पर दूसरे के अर्थ का उपस्थापन किया जाये वहाँ पर उपादान लक्षणा होती है।[1] अपना मुख्य अर्थ उचित ठहराने के लिए दूसरे का भी अर्थ ग्रहण कर लिया जाये वहीं उपादान लक्षणा होती है। लक्षण लक्षणा वहाँ होती है जहाँ पर अर्थ को संगत बनाने के लिए अपने अर्थ का भी त्याग कर दिया जाता है।[2] कुँवरकुशल द्वारा निरूपित दोनों लक्षण मम्मट के 'काव्यप्रकाश के आधार पर है।[3] सारोपा लक्षणा और साध्यवसाना लक्षणा के लक्षण दोहे में न देकर टीका में दिये गये हैं। यहीं पर शुद्धा और गौणी का भी अंतर स्पष्ट किया गया है

1- थापन अपने अर्थ कों पर अर्थ कोउ थाप।
कहत कुंअर कवि लच्छना उपादान ए आप।।
ल.ज.सिं.,पं० त., छं० सं० 17

2- उथपैं अपुने अर्थ कों। परअर्थनि कौ थाप।
लषिये लच्छन लच्छना। छेकनि की यह छाप।।
वही छं० सं० 20

3- स्वसिद्ध्ये पराक्षेपः परार्थं स्वसमर्पणम्।
उपादानं लक्षणं चेत्युक्ता शुद्धैव सा द्विधा।।

काव्यप्रकाश पृ० 32

जो निम्नलिखित रूप से प्रस्तुत किया गया है -

"थ इहां द्वै भेद शुद्ध होइ हि गौंण हू होंहि। जहां जाकौं आरोप कीजै ।। उपमान उपमेय विद्यमान रूप ।। आरोप्य अरू आरोप विषय ये दोऊ पद होहिं सो सारोपा कहियें ।। अरु जहां जाकौं आरोप कीजै आरोप्य सोइ पद है तहां साध्यवसाना समुझिये दोऊ द्वै भांति की ।। एक गौंणी । एक शुद्धा । जहां बराबरी कौ सम्बंध होइ सो गौंणी कहियें अरु जहां वाच्य सौं कार्य कारन सम्बंध होइ सो शुद्धा कहियें ।।

अपने कथन के स्पष्टीकरण के लिए पुन: व्याख्या प्रस्तुत की है । लक्षणा जानने के लिए अन्य चार प्रकार के तथ्य हैं जैसे तादर्थ्यभाव अर्थात् जो जिसके लिए हो केवल उसका नाम लिया जाये जैसे याचक को दिये जानेवाले वस्त्र को ही याचक कहा जाये । दूसरा अवयव सम्बंध जैसे वस्त्र को कहा जाये कि यह गज है अर्थात् वस्त्र की लम्बाई एक गज है तीसरा स्वामिभाव सम्बंध इसमें यदि दास को नृप कहा जाये तो अर्थ होगा दास नृप तुल्य है । एक अन्य कार्य कारण भाव जैसे घी को ही आयु कह दिया जाये [1] कुँवरकुशल ने मम्मट के अनुसार[2] ऐसा वर्णन प्रस्तुत किया है । परन्तु उदाहरणों से उन्नत है। सूरति मिश्र[3] के अतिरिक्त कुलपति मिश्र, देव, भिखारीदास, प्रभृति आचार्यों ने ऐसा वर्णन नहीं किया है । यहाँ पर कुँवरकुशल की स्पष्टीकरण की प्रवृत्ति मिलती है ।

1- कहू होत तादर्थ्यभाव करि याचक वस्त्र उजास ।
अवयव संबंधा गजपट ये स्वामिभाव नृपदास ।। ल.ज.सिं.,पं0त.,छं0सं0 24

2- काव्य प्रकाश, पृ0 40

3- कहूं होत तादर्थ्यभाव तें जातक वस्तु वखानों ।
कहूं अवयव संबंध सुगुनपट स्वामिभाव नृप दासें ।।
काव्यसिद्धांत छं0 सं0 11, 12

मम्मट के अनुसार भी सारोपा लक्षणा वह होती है जहाँ पर विषय और विषयी दोनों विद्यमान हों।[1] तथा साध्यवसाना लक्षणा वहाँ होती है जहाँ पर विषय विषयी के अंतर्गत तिरोभूत हो जाया करता है, अर्थात् उपमेय और उपमान में से उपमेय निर्दिष्ट नहीं रहा करता।[2] कुलपति मिश्र ने भी केवल गद्य की टीका में ही सारोपा लक्षणा तथा साध्यवसाना लक्षणा के सम्बंध में अपने विचार प्रकट किए हैं। भिखारीदास भी ऐसा ही कथन प्रस्तुत करते हैं।[3]

इसके बाद कुँवरकुशल ने पुनः इसी लक्षणा का नाम परिवर्तन करके जहत्स्वार्था, अजहत्स्वार्था तथा जहदजहत्स्वार्था कह कर निरूपण किया है। इन नामों का प्रयोग साहित्यदर्पणकार ने तथा देव ने अपने 'शब्द-रसायन' में किया है। कुलपति मिश्र तथा भिखारीदास ने लक्षणा का केवल एक ही नाम दिया है। कुँवरकुशल ने देव का अनुकरण करते हुए लक्षणा के दोनों नामों का उल्लेख किया है। ऐसा उन्होंने इसलिए कर दिया है कि जिससे पाठकों को किसी प्रकार का भ्रम न हो। पुनः अंत में सभी लक्षणाओं के नाम गिनाये हैं। इससे उनकी समझाने की पद्धति का पता चलता है। एक शिक्षक भी अंत में अपने कथन के प्रमुख तत्त्वों को पुनरावर्ति अवश्य करता है। यही विशेषता कुँवरकुशल की निरूपण-शैली में भी विद्यमान है।

1- सारोपाऽन्या तु यत्रोक्तौ विषयी विषयस्तथा। काव्यप्रकाश पृ0 36

2- विषय्यन्तः कृतेऽन्यस्मिन् सा स्यात्साध्यवसानिका। वही पृ0 37

3- और थापिये और कौं, क्यौं हूँ समता पाइ।
सारोपित सो लक्षना, कहैं सकल कविराइ।।
जाकी समता कहन कौं वहै मुख्य करि देइ।
साध्यवसान सु लक्षना, विषय नाम नहीं लेइ।।
भिखारीदास (द्वितीय खण्ड) सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 11

मम्मट ने यहीं पर लक्षणा शक्ति के ही अंतर्गत अगूढ़ लक्षणा और गूढ़ लक्षणा का भी वर्णन किया है परन्तु कुँवरकुशल ने उक्त लक्षणाओं को लक्षणा-शक्ति में स्थान न देकर व्यंजना शक्ति के अंतर्गत दिया है। क्योंकि मम्मट के अनुसार इस प्रकार की सव्यंग्या लक्षणा में भी जो प्रयोजन रहा करता है वह लक्षणा द्वारा नहीं वरन् व्यंजना द्वारा प्रतिपादित हुआ करते हैं। इनमें लक्षणा को इतना महत्व नहीं दिया जाता जितना व्यंजना को।[1] देव ने भी इसी प्रकार गूढ़ व्यंग्या तथा अगूढ़ व्यंग्या लक्षणा के अंतर्गत वर्णित किए हैं। परन्तु कुँवरकुशल ने उचित स्थान पर वर्णन किया है। अतः लक्षणामूला गूढ़ा व्यंजना तथा लक्षणामूला अगूढ़ व्यंजना का विवेचन भी व्यंजना के अन्तर्गत किया जायेगा।

व्यंजना शक्ति :

व्यंजना शक्ति तीसरे प्रकार की शब्द शक्ति है। कुँवरकुशल के मतानुसार- "जहाँ पर और भी अधिक अर्थवत्ता हो। वाचक और लक्षक की अपेक्षा व्यंजक शब्द अर्थ को और भी अधिक प्रभावपूर्ण बना देता है। सभी सुनते ही समझ लेते हैं और चित्त को सुहाता भी है।[2] कुँवरकुशल की यह परिभाषा शिथिल है। 'सब सुने तैं समुझियैं' पद स्पष्ट रूप से व्यंजना के स्वरूप की अवतारणा नहीं कर पाता। व्यंजना शक्ति प्रबुद्ध व्यक्ति ही समझ सकते हैं। व्यंजनात्मक कथन को समझने के लिए वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ से भी आगे बढ़ जाना पड़ता है। कुँवरकुशल की यह परिभाषा कुलपति मिश्र के 'रस-रहस्य' से प्रभावित है।[3] सूरति मिश्र का विचार है कि जहाँ पद के सम्बंध से किसी दूसरे प्रकार के अर्थ की प्राप्ति

1- प्रयोजनं हि व्यंजनव्यापार गम्यमेव। काव्यप्रकाश पृ० 42

2- अधिक बनावै अर्थ कौं व्यंजक ताहि बताय।
सब सुनै तैं समुझियैं सो चित अैन सुहाय।। ल.ज.सिं०, पं०त., छं०सं० 25

3- अरथ बनाइ अधिक कहै व्यंजक कहियै तासन्।
र.र., द्वि.वृ. छं० सं० 12

होती है। [1] सोमनाथ का भी कहना है कि व्यंजक शब्द वह है जो कहे हुए अर्थ को और अधिक कहता है। [2] आधुनिक काव्यशास्त्रकार पं० रामदहिन मिश्र व्यंजना के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं कि - 'अभिधा और लक्षणा के अपना-अपना अर्थ बोध कराके विरत-शांत हो जाने के बाद जिस शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ का बोध होता है उसे व्यंजना कहते हैं। [3] डॉ० गुलाबराय भी इस व्यंजना-शक्ति के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। [4]

व्यंजना के भेद :

व्यंजना के दो भेद होते हैं - लक्षणामूलक व्यंजना और अभिधामूलक व्यंजना। लक्षणामूलक व्यंजना के पुनः दो भेद होते हैं - गूढ़ और अगूढ़। गूढ़ लक्षणामूलक व्यंजना तो केवल सहृदय ही समझ सकते हैं और अगूढ़ लक्षणामूलक व्यंजना सभी के द्वारा हृदयंगम की जा सकती है। [5] कुलपति मिश्र का भी यही विचार है। [6] भिखारीदास भी गूढ़ व्यंजना को छिपी हुई और अगूढ़ व्यंजना को प्रकट मानते हैं।

1- जह पद के सम्बंध तें भासै अनियत अर्थ।
चतुरनि कौं सो व्यंजना तिहि धुनि कारि समर्थ।। काव्यसिद्धांत छं० सं० 13

2- अधिक कहै कहि अर्थ कौं व्यंजक शब्द सु जानि।
हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ० सत्यदेव चौधरी पृ० 163 से उद्धृत।

3- काव्यालोक(द्वितीय उद्योत) पं० रामदहिन मिश्र, पृ० 131

4- वह शक्ति वाक्य-रचना में ऐसा प्रभाव पैदा कर देती है कि पाठक लेखक से तादात्म्य अनुभव करने लगता है।
सिद्धांत और अध्ययन-डॉ० गुलाबराय, पृ० 246

5- सहृदय कवि जो समझि है गनियै व्यंग्य सुगूढ़।।
सबहि लखन जाकौं सुही यह कहि व्यंग्य अगूढ़।। ल.ज. सिं०, पं.त. छं० सं० 1

6- कवि सहृदय जाकों लखे व्यंग्य सु कहिय गूढ़।
जाको सबको कुलखे सो पुनि होइ अगूढ़।। र.र. द्वि.वृ. छं० सं० 13

7- गूढ़ अगूढ़ौ व्यंगि द्वै होति लक्षनामूल।
छिपी गूढ़ प्रगटहि कहैं अगूढ़ समतूल।।
भिखारीदास(द्वितीय खण्ड) सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० 13

व्यंजना का दूसरा भेद अभिधामूलक व्यंजना है। कुँवरकुशल इसका लक्षण इस प्रकार देते हैं - अनेकार्थ शब्द योग आदि के द्वारा एक निश्चित अर्थ ग्रहण करता है।[1] मम्मट के विचारानुसार-अभिधामूलक व्यंजना वह हुआ करती है जहाँ पर अनेकार्थक पद के प्रयुक्त होने पर उनका वाचकता का स्वरूप संयोग आदि विभिन्न कारणों से नियंत्रित हो जाता है और उसका वाचकत्व का अर्थ व्यर्थ प्रतीत होने लगता है।[2] चिन्तामणि भी अनेकार्थ शब्द का संयोग आदि से कुछ भिन्न प्रकार से वर्णित होना मानते हैं जिसे अवाचक स्वरूप में ग्रहण किया जाता है।[3] कुलपति मिश्र[4] और भिखारीदास[5] का भी यही विचार है। कुँवरकुशल की इस परिभाषा को देखते हैं तो मम्मट से इसका अंतर स्पष्ट ही परिलक्षित होता है। मम्मट ने जहाँ अर्थ का नियंत्रण स्वीकार किया है वहीं कुँवरकुशल ने `नियंत्रण` शब्द का

1- कह्यौ शबद बहु अर्थ को योगादिक सौं जानि।
अभिधामूल सुब्यंग्य यह अर्थ नियम जह आनि।।
ल.ज.सिं0,पं0त., छं0 सं0 5

2- अनेकार्थस्य शब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते।
संयोगाद्यैरवाच्यार्थधीकृद्व्यापृतिरंजनम्।।
काव्यप्रकाश पृ0 48

3- शब्द अनेकारथ वरनि अति कछु भिन्न प्रकार।
होइ संजोगादिक गमन इत अवाच्य को सार।
हिन्दी रीति-परंपरा के प्रमुख आचार्य-डॉ0 सत्यदेव चौधरी पृ0 149से उद्धृत।

4- बहुत अरथ के सबद कौं योगादिक अनुकूल।
अर्थ नियम जह कीजियै व्यंग्य सु अभिधामूल।।
र.र.द्वि.वृ.छं0सं0 16

5- सब्द अनेकारथन बस, होइ दूसरे अर्थ।
अभिधामूलक व्यंग्य तेहि, भावत सुकवि समथ।।
भिखारीदास(द्वितीय खण्ड)सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ0 12

प्रयोग नहीं किया है। परंतु इससे कोई अंतर नहीं पड़ता क्योंकि यह तो स्पष्ट स्वीकार किया है कि अनेकार्थ शब्द का संयोग आदि परिस्थिति जन्य कारणों से अभिधायक अर्थ निरर्थक हो जाता है और किसी भी एक अर्थ का सूचक बन जाता है। किन्तु यह स्पष्ट है कि कुँवरकुशल का उपर्युक्त विवेचन मम्मट की अपेक्षा संक्षिप्त है। इन्होंने केवल तत्व-तत्व तक अपने को सीमित रखा है- उसके विस्तृत विवेचन में वह नहीं पड़े हैं।

अभिधामूलक व्यंजना को बतानेवाले 14 नियामक प्रकार मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश में बताये हैं। ये निम्नलिखित हैं-संयोग, विप्रयोग, साहचर्य, विरोधिता, अर्थ, प्रकरण, लिंग, शब्दान्तर सन्निधि, सामर्थ्य, औचिती, देश, काल, व्यक्ति और स्वर।[1] कुँवरकुशल ने क्रम परिवर्तन करते हुए केवल 10 प्रकार बताये हैं - संयोग, वियोग, अर्थ, विरोध, प्रसंग, चिन्ह(मम्मट का लिंग), शब्द का साथ(मम्मट का शब्दान्तर सन्निधि), समय (मम्मट द्वारा निरूपित काल) देश संगम(मम्मट द्वारा निरूपित साहचर्य)।[2] कुलपति मिश्र ने चेष्टादिक की ओर भी संकेत किया है। कुँवरकुशल ने अंत में यह भी कहा है कि व्यंग्य वर्णन करने की बहुत सी रीतियाँ हैं। इससे द्योतित होता है कि मम्मट के अन्य शेष नियामक प्रकार भी अभीष्ट थे, परन्तु उनका वर्णन नहीं किया गया है।

1- काव्य प्रकाश, पृ0 49

2- कह्यौ शब्द बहु अर्थ को योगादिक सौं जानि।
अभिधामूल सुव्यंग्य यह अर्थ नियम जह आनि।।
है संयोग वियोग है सो है काहू संग।
कह्यौ विरोध जु अर्थ कहूं बरनै कवि ये व्यंग।।
शबद साथ चिन्हहिं समौ अवरु देश कौ अंग।
बहुत रीति कुअरेस ये बरनत नीके व्यंग्य।।
ल.ज.सिं0, पं0 त., छं0 सं0 5,6,7

आर्थी व्यंजना से पूर्व कुँवरकुशल ने कुलपति मिश्र के अनुसार तीन प्रकार की व्यंजकता का वर्णन किया है - वाच्यार्थ व्यंजकता, लक्ष्यार्थव्यंजकता तथा व्यंग्य-व्यंजकता । इन तीनों के मात्र उदाहरण दिये गये हैं, लक्षण नहीं । भिखारीदास ने आर्थी व्यंजना के उपरांत तीनों प्रकार की व्यंजकता का वर्णन किया है जिससे क्रमबद्धता बनी रह सकी है ।

आर्थी व्यंजना :

लक्षणामूलक व्यंजना और अभिधामूलक व्यंजना दोनों शब्द पर आधारित हैं । इसलिए ये दोनों शाब्दी व्यंजना कहलाती हैं । आर्थी व्यंजना में अर्थ पर विशेष बल दिया जाता है, यहाँ पर अर्थ की सहायता से व्यंग्यार्थ की प्रतीति होती है । मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश में आर्थी व्यंजना के दस प्रकार बताये हैं - वक्तृ-वैशिष्ट्य, बोद्धव्य-वैशिष्ट्य, काकु-वैशिष्ट्य, वाक्य-वैशिष्ट्य, वाच्य-वैशिष्ट्य, अन्य-सन्निधि-वैशिष्ट्य[1] कुँवरकुशल ने इनमें से बोद्धव्य-वैशिष्ट्य और अन्यविध-वैशिष्ट्य को छोड़ दिया है शेष आठ प्रकारों का वर्णन किया है।[2] अन्यविध वैशिष्ट्य के अंतर्गत चेष्टा का वैशिष्ट्य मम्मट द्वारा निरूपित हुआ है उसे ही कुँवरकुशल ने भ्रमवश अभिधामूलक व्यंजना के अंतर्गत वर्णित कर दिया है । वास्तव में यह उदाहरण आर्थी व्यंजना के चेष्टा-वैशिष्ट्य का है । इसे मम्मट द्वारा दिये गये उदाहरण से तुलना करके जाना जा सकता है -

---

1- काव्यप्रकाश, पृ0 53

2- पढि प्रस्ताव समैं सुपुनि देश अर्थ दरसाय ।
वाक्य काकुटि और की वक्ता वर्ण बताय ।।

ल.ज.सिं0, पं0 त., छं0 सं0 20

कुँवरकुशल द्वारा प्रस्तुत उदाहरण :-

भुवन के द्वार ठारी अंक कौं पसारि पाछे
लये हैं उसारि कैसी करी चतुराई है।
सीस कौं बसन खैंचि घूंघटा कियो है आगे
नैननि कौं मूंदि ग्रीवा नीचे कौं नवाई है।
मुख मौन राखि बाहु लता कौं विचार करि
फेरि जोरि लई बात दुहुं मनभाई है।
मदन गुपाल जू कौं दूरिही तैं देखत ही
चेसटा दिखाय राधे बात समझाई है ।।[1]

मम्मट द्वारा निरूपित उदाहरण :-

द्वारोपान्तनिरन्तरे मयि तथा सौन्दर्यसारश्रिया
प्रोल्लास्योरुयुगम् परस्परसमासक्तम् समासादितम् ।
आनीतम् पुरत: शिरोंशुकमध: क्षिप्ते चले लोचने
वाचस्तत्र निवारितम् प्रसरणम् संकोचिते दोलते ।।[2]

कुँवरकुशल ने अपने उदाहरण में स्पष्ट ही चेसटा का उल्लेख किया है। अत: यह आर्थी व्यंजना का ही उदाहरण है। मम्मट द्वारा किये गये उदाहरण में तथा कुँवरकुशल के उदाहरण में अंतर केवल अंतिम पंक्तियों में ही है। कुँवरकुशल के उदाहरण की पंक्तियाँ युगानुरूप ही आई हैं। अंतिम पंक्ति में किये गये

1- ल.ज.सिं०,पं०त.,छं०सं० 15

2- काव्यप्रकाश, पृ० 58

'मदनगुपाल' और 'राधे' शब्द रीतिकालीन कविता का प्रतिनिधित्व करते हैं। संस्कृत काल में उपलब्ध श्रृंगार वर्णन सामान्य नायक नायिका को लेकर मिलता है अथवा किन्ही के नामोल्लेख के साथ। परन्तु रीतिकाल में वर्णन के पात्र सामान्य नायक नायिका नहीं वरन् कृष्ण और राधा ही रहे हैं। यह रीतिकाल के साहित्य की अपनी प्रवृत्ति रही है। इस समय में अलौकिक राधा कृष्ण लौकिकता के धरातल पर प्रतिष्ठित हो चुके थे, उनके प्रति जो पूज्य भाव था वह तिरोभूत हो चला था। इसी कारण भिखारीदास को कहना पड़ा कि 'आगे के कवि रीझिहैं नतरू राधा कन्हाइ सुमिरन कौ बहानौ है'। कुँवरकुशल के उक्त उदाहरण में भी यही प्रवृत्ति देखने को मिलती है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि कुँवरकुशल द्वारा प्रस्तुत शब्दशक्ति का विवेचन स्पष्टता को लिए हुए है। अपने इस विवेचन में मम्मट के 'काव्यप्रकाश' का पर्याप्त उपयोग किया गया है। शब्द शक्ति के तीनों प्रकार अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना का विस्तृत रूप में विश्लेषण किया है और उन्हें पूर्ण रूप से समझाने के लिए बार-बार पुनरावर्तित रूप से वर्णित किया गया है। इससे उनकी विवेचन शैली का पता चलता है। इस प्रयास से वर्णन को सहज ही हृदयंगम किया जा सकता है।

--